अन्तर का आलोक

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

शरीर का आंतरिक जगत एक प्रयोगशाला है। इस प्रयोगशाला में अनेक कार्य होते हैं। आंतरिक जगत में घटने वाली घटनाएं बहुत सूक्ष्म होती है। बाह्य जगत की घटनाओं को तो हम जान जाते हैं किन्तु आंतरिक जगत को हम नहीं जान पाते। आंतरिक जगत को जानने के लिए आत्मा को जानना आवश्यक है। बाह्य जगत स्थूल जगत हैं, आंतरिक जगत सूक्ष्म जगत है। सूक्ष्म स्थूल से अधिक शक्तिशाली होता है। बाहर का शरीर स्थूल शरीर है। हमारे अन्दर सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म शरीर हैं। शरीर के सभी अवयवों को आत्मा व्याप्त किये हैं। आत्मा अनन्त ज्ञान दर्शन शक्ति और आनन्द का केन्द्र है। बाह्य जगत में यदि हमें लाभ हो जाता है तो हम सुखी हो जाते हैं यदि घाटा हो जाता है तो हम दुःखी हो जाते हैं। बाहर जगत से व्यवहार चलता है। भीतर तेजस शरीर विद्यमान है। यह एक बहुत बड़ी फैक्ट्री के समान है। जैसे फक्ट्री में अनेक मशीने काम करती हैं वैसे ही आतंरिक जगत में शरीर के अनेक उपकरण शरीर को स्वस्थ और आलोकित करने के लिए काम करते रहते हैं। आत्मा का प्रकाश करोड़ों सूर्यों के प्रकाश से भी अधिक है। किन्तु कर्म रज के कारण वह प्रकाश ढ़क जाता है। काम, क्रोध, मद लोभ आत्मा के शत्रु हैं। आत्मा की शक्ति को ये क्षीण कर देते हैं किन्तु जैसे ही अन्तःकरण का अंधकार दूर होता है वैसे ही आत्मा अपने स्वाभाविक स्वरूप में आकर प्रकाशित हो जाती है।

प्रकाश ज्ञान का परिचायक है और अज्ञान अंधकार का द्योतक है। दीपक घोर अंधकार को दूर कर प्रकाश कर देता है। सरस्वती ज्ञान की देवी है। ज्ञान के लिए सरस्वती की आराधना की जाती है। सरस्वती की प्रसन्नता से लोगों को ज्ञान प्राप्त होता है। दीपक को प्रज्जवलित करके सरस्वती की पूजा की जाती हैं और प्रार्थना की जाती हैं कि जीवन को ज्योतिर्मय कर दो। ज्ञान दूसरे को प्रकाशित करता है। मानव को स्वपर प्रकाशक होना चाहिए। तीन तरह की चेतना है– स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ की चेतना। जियो और जीने दो की भावना परार्थ की

चेतना से सम्बन्धित है। स्वार्थ की चेतना अपने और अपने परीवार तक सीमित रहती है। परमार्थ की चेतना ज्योतिर्मय ज्ञान है। ज्योतिर्मय जीवन के लिए मानव को संयमी होना चाहिए। संयमः खलु जीवनम् अर्थात् जीवन में संयम का बहुत बड़ा महत्व है। इससे जीवन की ज्योति जगमगाती है। प्राणिमात्र के प्रति संयम की भावना रखना अहिंसा है। अहिंसा जीवन का सबसे बड़ा सूत्र है।

मानव के सामने दो जगत हैं– लौकिक जगत और आध्यात्मिक जगत। लौकिक जगत् पांच इन्द्रियों का जगत है। इस जगत में सभी प्राणी रहते है और अपनी चेतना का विकास करते हैं। कुछ प्राणी ऐसे होते हैं जो इस लौकिक जगत से परे आध्यात्मिक जगत का चिंतन करते हैं और अपनी आत्मा का विकास करते हैं। आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र है। आध्यात्मिकता के ही कारण भारत को विश्वगुरु का दर्जा प्राप्त है। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियों के मेल से जो संक्रमण आया भौतिक समृद्धि उसी का परिणाम है। हमारे देश में सर्वप्रथम आत्मचिंतन हुआ। हम कौन हैं? कहां से आये हैं? मरने के बाद यहां से आत्मा कहां जाती है। आत्मा का अस्तित्व है या नहीं इन सब विषयों पर भारतीय वाङ्मय में गम्भीर चिंतन हुआ है। भारतीय चिंतकों ने भौतिक समृद्धि को अधिक महत्व नहीं दिया। उनके विचार में धन नश्वर है। आज है कल नहीं रहेगा। इसलिए ऐसी सम्पदा को प्राप्त किया जाये जिसका अस्तित्व त्रिकाल में वर्तमान रहता है। इसलिए भारतीय शास्त्र वेत्ताओं ने अपने चिंतन के केन्द्र में आत्मा को रखा। भौतिक सम्पत्ति विनश्वर है और आध्यत्मिक सम्पत्ति शाश्वत। जीवन की समग्र समस्याओं का स्वरूप और समाधान समझने के लिए हमें उसके दोनों पक्षों को समझना आवश्यक है। एक वह है जो शरीर से सम्बन्धित है और दूसरा वह है जो अन्तरात्मा पर निर्भर है। शरीर की समस्याओं और आवश्यकताओं का सीधा सम्बन्ध भौतिक सुखों से है। भोजन, वस्त्र और निवास की सुविधाएं तथा इंद्रियों के अपने–अपने विषय शरीर से संबंधित है। ये वस्तुएं उचित समय पर और उचित मात्रा में जब मिलती रहती हैं तो शरीर की तुष्टि होती रहती है। पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय और मन ये एकादश इंद्रियां है। मन का विषय है लोभ, मोह और अहंकार ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन की जितनी मात्रा में संतुष्टि होती है उतना ही शरीर प्रसन्न रहता है। शारीरिक जीवन चर्या का प्रयास प्रायः इन्हीं कृत्यों में लगा रहता है।

शरीर तुष्टि में इंद्रिय तुष्टि भी एक विषय है। आंख, कान, नाक, जीभ और जननेन्द्रिय के अपने–अपने विषय है। इनकी लिप्सा ऐसी है जो भोगों की थकाने वाली मात्रा मिल जाने पर भी संतुष्ट नहीं होती। इच्छा का कोई अंत नहीं। यह आकाश के समान अनन्त है। इच्छा की पूर्ति में ही मानव लगा रहता है और भौतिक सुख–साधनों की खोज जीवनभर चलती रहती है। यह संग्रह की प्रवृत्ति भौतिक लालसा को उत्पन्न करती है। जबकि मनुष्य को खाने के लिए चार रोटी, पहनने के लिए दो गज कपड़ा और सोने के लिए एक चारपायी की आवश्यकता होती है। इससे अधिक यदि उसे दिया जाये तो उसका उपभोग सम्भव नहीं।